सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और राजनीतिक चेतना

डॉ. संजय चावड़ा

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर

गवर्मेंट आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज तालाला (गीर) -गुजरात

सर्वेश्वरदयाल की कविताओं व नाटकों में मानव जीवन का बहुरंगी यथार्थ, राजनीतिक चहल-पहल, प्रकृति-प्रेम आदि का सहज भाषा में चित्रण हुआ है। उनकी कविताओं और नाटकों को पढ़ना एक भरे-पूरे मनुष्य की दुनिया से गुज़रना है। एक तरफ जनता की निष्क्रियता के प्रति उनमें क्षोभ है तो दूसरी ओर उनकी शक्ति में उन्हें गहरी आस्था है। ऐसी अनेकों कविताएं और नाटक सर्वेश्वर ने लिखे हैं, जिनमें वे जनता की सामूहिक शक्ति को जगाने का प्रयास करते हैं। वे आलोचनात्मक विवेक संपन्न कवि थे। 'देशगान' और 'कालाधन' जैसी कविताएं और 'बकरी' जैसा नाटक उन्हीं के जैसा व्यक्ति लिख सकता था। वह 'दिनमान' पत्रिका से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण पत्रकार थे। उनका 'चरचे और चरखे' स्तंभ 'दिनमान' की पहचान रहा। उनकी पत्रकारिता साहसपूर्ण पत्रकारिता का श्रेष्ठ उदाहरण है। उनकी रचना 'देशगान' इसी साहसिकता का परिचय देती है।

'काठ की घंटियां', 'बांस का पुल', 'एक सूनी नांव', 'गर्म हवाएं', 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द', 'खूंटियों पर टंगे लोग' आदि उनके महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। उन्होंने 'पागल कुत्तों का मसीहा', 'उड़े हुए रंग', 'सोया हुआ जल', 'कच्ची सड़क' और 'अंधेरे पर अंधेरा' जैसे लघु उपन्यास की रचना कर हिंदी उपन्यास साहित्य को नई जमीन दी। 'बकरी', 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ', 'कल भात आएगा' तथा 'हवालात' जैसे नाटकों को लिखकर आज़ादी के बाद सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ का उन्होंने बड़ा ही विश्वसनीय चित्रण किया है। उनकी भाषा आम बोलचाल की भाषा है, यही कारण है कि लोग सहजता से उनके साहित्य से जुड़ जाते हैं। अपनी कविता 'कालाधन' में उन्होंने जिस लड़ाई को जारी रखने की बात कही थी, वह आज भी लोगों को प्रेरित करती है।

सर्वेश्वर ने अपने समय की राजनीति पर तीखी टिप्पणियां लिखी हैं । समाजवादी, लोहियावादी विचारों की भावभूमि ने उनके लेखन को अतिरिक्त धार दी है । वे समूची राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश से भरे दिखते हैं । आम आदमी के जीवन से जुड़ी विसंगतियों, उसके संत्रासों के खिलाफ वे राजनीति से नैतिक अपेक्षाएं पालते हैं । ऐसा न होता देख वे समूची

राजनीतिक सत्ता को कटघरे में खड़ा करके आरोपित करते हैं । राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ रही मूल्यहीनता, गैरजिम्मेदारी एवं जनता के प्रति अन्याय एवं दमन पर हल्ला बोलते नज़र आते हैं । श्रीमती इंदिरा गांधी पर व्यंग्य करते वे कहते हैं -

" बीबी इंदिरा रे

तू तो लोकतंत्र की रानी ×××

गोली नाचे, डंडा नाचे

नाचे आँसू गोला

दीन दुखी की चीखें नाचे ×××

नंगी हो महंगाई नाचे ×××

गिट पिट गिट अंग्रेजी नाचे ×××

संविधान के पन्ने नाचे "[1]

तो इस अन्य उदाहरण में वे चुनाव और इंदिरा गांधी पर व्यंग्य करते कहते हैं कि-

"चुनाव लड़ने वालों !

तुम किसी भी पार्टी में क्यों न हो

ले जाओ नया नारा

इतना लगाओ, इतना लगाओ

कि फट जाए आसमान सारा

'इंदिरा गांधी ज़िंदाबद

बाकी दुनिया मुर्दाबाद।' "[2]

राजनीति से सामाजिक बदलाव की अपेक्षा पालते हुए सर्वेश्वर निराश नहीं दिखते । उन्हें लगता है कि लोग खड़े होंगे और बदलाव आएगा । राजनीतिक तंत्र के प्रति गहरी निराशा के बावजूद उनमें एक आशावाद भरा है । यही आशावाद उनके लेखन की जीवंतता है । वे इसे समझते हुए लोगों के प्रेरित करने का काम करते हैं, लोगों की मुक्ति चाहते हैं । वे समाज के

प्रत्येक वर्ग से यह आशा पालते हैं कि वह राजनीतिक दुरावस्था के खिलाफ चल रहे प्रतिरोधों का हिस्सेदार बने । उनकी राजनीतिक टिप्पणियां इसीलिए बहुत तल्ख हो जाती हैं । शब्दों से हथियार का काम लेना वे बखूबी जानते हैं, पर इन सबके बीच वह लेखक की मर्यादा का विचार भी करते हैं । उनकी चाहत बदलाव के लिए लड़ रहे लोगों को हौसला देने की है । इसीलिए बहुत छोटे पैमाने पर गांव-कस्बों में चलाए जा रहे जनसंगठनों के प्रतिरोध उनमें एक आशा का संचार करते हैं । सड़ांध मारती राजनीतिक व्यवस्था को सर्वेश्वर ने अपने साहित्य के माध्यम से फटकारा है । ऐसे प्रसंगों के सीमित प्रभाव के बावजूद वे उसे महत्त्वपूर्ण मानते हुए अपनी पत्रिका एवं स्तंभ में जगह देते थे । सत्य के प्रति उनका आग्रह जबरदस्त था । वे मानते थे आज के दौर में सत्य कहना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, सच कौन कह रहा है, यह सवाल उतने महत्त्व का नहीं है । वे मानते थे कि गलत बुनियाद से सच्चाई की आवाज़ नहीं आ सकती । वे सामंतवादी, सत्तावादी संस्कारों से परे एक आम आदमी की पीड़ा के वाहक थे । उनकी समूची सृजन यात्रा इसी भाव में रची-बसी है । राजनीतिक सवालों पर भी वे दिल्ली की धमाचौकड़ी और उठापटक के बीच इससे आम आदमी पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करते रहते थे ।

सर्वेश्वर आज़ादी के बाद गांधी और गांधीवाद के हुए व्यापक दुरुपयोग पर बहुत क्षुब्ध थे । आज़ादी के बाद गांधी के सपनों की उनके शिष्यों ने जैसी गत बनाई वह सर्वेश्वर के लिए असहनीय पीड़ा का विषय था । वे वर्तमान शासन एवं गांधीवाद के आदर्शों की तुलना करते हुए 'चरखे और चरखे' के आलेख 'गांधीवाद इस देश की चेतना में जहरवाद की तरह फैल गया है' में सपनों का हवाला देते हुए वर्तमान सत्ता को गांधीवादी विचारों का हत्यारा बताते हैं । अपनी इस आलेख में सपनों के तार-तार होकर बिखर जाने की व्यथा को अभिव्यक्त करने के लिए वे अपनी एक कविता का हवाला देते हैं –

मैं जानता हूँ

क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का ?

उत्सवों में अधिकारियों के

बिल्ले बनाने के काम आ गई ।

भीड़ से बचकर

एक सम्मानित विशेष द्वार से

आखिर वे उसी के सहारे तो जा सकते थे ।

और तुम्हारी लाठी ?

उसी को टेककर चल रही है

एक बिगड़ी-दिमाग डगमगाती सत्ता-[3]

सर्वेश्वर, गांधी के नाम का घृणास्पद इस्तेमाल देखकर अपने आपको रोक नहीं पाते, वे लिखते हैं – गांधी और गांधीवाद के नाम पर हर एक का रोजगार चमक रहा है । उनकी समाधि पर फूल चढ़ाकर, सब अपनी फूलों की सेज सजाते रहे हैं । इस पर ज्यादा कहना कोई मायने नहीं रखता । इस देश के नेताओं का काम गांधी के बिना नहीं चलता । यद्यपि गांधी से किसी को कोई सरोकार नहीं है । बल्कि गांधी के सिद्धांत के विपरीत जो कुछ है उसे ही गरिमा प्रदान करने की घटिया कोशिश की जा रही है ।[4] यह टिप्पणी बताती है कि सर्वेश्वर का लेखन किसी को नहीं बख्शता, वे सत्य के आग्रही हैं और उसके लिए कुछ भी करने की आकांक्षा से उनकी लेखनी भरी-पूरी है । वे अन्याय एवं दमन का साथ देने वालों, यथास्थितिवादियों को भी दोषी ठहराते हैं । सर्वेश्वर के लेखन में विनय नहीं है, वे अपनी बात को पूरी तल्खी एवं तेजाबीपन से कहने के अभ्यासी हैं ।

राजनीतिक दलों द्वारा युवाओं की ताकत के दुरुपयोग का सवाल वे बराबर उठाते रहे हैं । वे मानते हैं कि राजनीतिक दलों की युवा शाखाएं समाज परिवर्तन में युवाओं की ताकत के रचनात्मक इस्तेमाल का कौशल पैदा करें । वे युवा शक्ति व राजनीतिक दलों के रिश्ते बदलना चाहते थे । 'कार्यक्रम नहीं समारोह चाहिए' नामक आलेख में उन्होंने युवा राजनीति में युवक कांग्रेस की भूमिका पर तमाम सवालिया निशान खड़े किए हैं । वे मानते हैं कि युवा इकाइयां चाह लें तो देश में बदलाव की आग को तेज किया जा सकता है, पर निहित राजनीतिक स्वार्थ उन्हें एक सीमा से आगे बढ़ने नहीं देते । वे माओ के रेड गार्डस का हवाला देते हुए कहते हैं कि युवा शक्ति चाहे तो सब कुछ ठीक हो सकता है । लेकिन इसकेलिए उन्हें अपने छोटे-मोटे निहित स्वार्थों से ऊपर उठना होगा । वे साफ कहते हैं युवा समारोहों में सत्ता की लोलुपता है, बदलाव का सपना नहीं । सारे आयोजन दिखावे एवं प्रचार का साधन बन गए हैं । इसमें नैतिक बल एवं इच्छा शक्ति कहाँ दिखती है ? दहेज शिक्षा, बेरोजगारी जैसे सवालों पर युवा शक्ति के मौन को वे एक नकारात्मक संकेत मानते हैं ।

सर्वेश्वर लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया की खामियों के बावजूद उसमें भरोसा रखते थे । वे लोकतंत्र को ज़्यादा प्राणवान, ऊर्जावान एवं जीवंत देखना चाहते थे । वे मानते थे कि लोकतंत्र का कोई बेहतर विकल्प नहीं हो सकता । वे मानते थे कि आदमी लोकतंत्र में अपनी बेहतरी के लिए लड़ सकता है पर तानाशाही में उसे जितना मिला उसी में संतोष करना होगा । वे मानते थे कि तानाशाही अपने आप में एक अमानवीय व्यवस्था है, जो तानाशाह के लाख अच्छा प्रशासक होने के बाद भी बदलाव को रोक यथास्थितिवाद को बनाए रखने के प्रयास करती है । वे राजनीति का चरित्र बदलने के पक्ष में थे । समाज की बुनियाद में परिवर्तन चाहते थे । गरीबी, अशिक्षा, बेकारी जैसे सवालों पर लोगों की एकता चाहते थे । आज़ादी को सही अर्थों में फलीभूत देखने के लिए वे लोगों में चेतना का संचार चाहते थे ।

सर्वेश्वर ने राजनीतिक सवालों पर तीखे व्यंग्य लिखे और लोगों को झकझोरा । वे सवाल खड़े करते थे और उनके पास इसके जवाब थे । उनकी आँखों में बदलाव का सपना पल रहा था । वे 'दाढ़ी की राजनीति', 'लोकतंत्र का लड्डू', 'जूते का तर्क', 'लोकतंत्र और प्याज', 'टिकटार्थी', 'संजय अखाड़ा', 'अखिल भारतीय बकरा यूनियन', 'बाबा जी का टेप', 'असली जगजीवन राम की खोज' जैसे व्यंगपरक आलेखों में अपनी भाषा के जौहर दिखाते हैं । संवाद की चुटीली शैली उनके लेखन को समादृत करती है । एक रास्ता दिखाती है । लोग क्या चाहते हैं यह बताती है । सवाल खड़े करना उनकी आदत में शुमार है । साथ ही वे जनता को विकल्प भी देते हैं कि वह इन सवालों से जूझे । जैसेकि उन्होंने अपने नाटक 'बकरी', 'अब गरीबी हटाओ' और 'भों भों खो खो' में कई प्रश्न खड़े किये हैं, और अंत में जनक्रांति के माध्यम से विकल्प भी दिया है ।

भ्रष्ट राजनीतिज्ञ एवं सड़ांध मारती राजनीतिक व्यवस्था सर्वेश्वर के निशाने पर रहे हैं । वे बराबर उनकी अपनी व्यंग्यात्मक टिप्पणियों में लानत-मलानत करते रहे हैं । 'जानवर और चुनाव चिन्ह' आलेख में उन्होंने ने पशुओं को केन्द्र में रखकर मजेदार सवाल खड़े किए हैं । नाटकीय शैली में लिखे गए इस आलेख में सर्वेश्वर जानवरों से संवाद करते हैं । जानवरों के मुख से वे हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर तीखी टिप्पणियां करवाते हैं । इसमें जानवरों ने चुनाव-चिन्ह के रूप में अपने इस्तेमाल पर कड़ी आपत्ति जताई है । इसमें मुर्गा कहता है – "हम आवाज लगाते हैं तो सूरज उगता है । आदमी जाग उठता है और आपके ये राजनीतिज्ञ आवाज लगाते हैं तो देश सो जाता है । अंधेरा छा जाता है ।"[5]

सर्वेश्वर के साहित्य का बड़प्पन यही है कि वे आम लोगों की समस्याओं से संवाद कराते है । वे आम आदमी के संत्रासों से जुड़े हैं । सर्वेश्वर का साहित्य सिर्फ़ अपने सामाजिक सरोकारों के

चलते ज़्यादा ग्राह्य एवं स्वीकार्य है । सर्वेश्वर ने आम आदमी के दर्द को जिस संवेदनशीलता से अपने साहित्य में जगह दी है वह महत्त्वपूर्ण है । वह उपदेशक की मानसिकता से नहीं, लोगों के साथ चलने वाले, खड़े रहने वाले साहित्यकार की भूमिका में हमारे सामने आते हैं । सर्वेश्वर के इस योगदान को समझना एवं पहचानना उनके साहित्य के प्रदेय को समझना है ।

 सन्दर्भिका

1- सं. वीरेंद्र जैन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खंड -5, पृ.64, संस्करण 2004, वाणी प्रकाशन -नयी दिल्ली

2- उपरिवत् खंड - 8, पृ.20

3- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चरखे और चरखे, पृ. 11, संस्करण प्रथम 1986, राजकमल प्रकाशन- नयी दिल्ली

4 - उपरिवत् पृ. 8

5 - उपरिवत् पृ. 234